National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.newresearchjournal.com
ISSN: 2455-9040
Received: 04-01-2025, Accepted: 03-02-2025, Published: 18-02-2025
Volume 10, Issue 1, 2025, Page No. 5-8

अंतःकरण की गहनताः तत्वों और कार्यों की समझ

डॉ. आशुतोष कुमार
मैकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग, बेनेट इंजीनियरिंग, ग्रेटर नोएडा, उत्तप्रदेश, भारत

सारांश
सांख्य योग में पुरुष और प्रकृति के संयोग से जिस पहले तत्व का निर्माण होता है उसे महतत्व या महत कहा जाता है। महत से क्रमशः अहंकार और फिर उससे त्रिगुणमयी शक्ति से आबद्ध होकर मन सहित दस इन्द्रियों, बुद्धि, पञ्च तन्मात्राओं और पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति हुई, जो शरीर का कारण बना। कोई महापुरुष महतत्व को चित्त बताते हैं तो कोई बुद्धि बताता है, कोई इसे महानतत्व। इस शोधपत्र में, शरीर, उसके प्रकार, अंतःकरण चतुष्ट्य (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार), उनके लक्षण और वृतियों को समझने की कोशिश की गयी है। साथ ही साथ महतत्व की भी विवेचना की गयी है। आशा है कि साधारण जन मानस को इसे सही और आसान शब्दों में समझने में सहायता प्राप्त होगी।

मूल शब्दः मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार

अध्यात्म की दृष्टि से शरीर तीन प्रकार के होते हैं। विवेक–चूड़ामणि [1] में आचार्य शंकर ने इसे परिभाषित किया है। चित्र १ में इसे दिखाया गया है।

स्थूल शरीरः त्वचा, मांस, रक्त, स्नायु, मेद, मज्जा तथा अस्थियों से निर्मित और मलमूत्र से परिपूर्ण, यह स्थूल शरीर कहा गया है (वि. चू. श्लोक –८७)।
त्वङ्ग–मांस–रुधिर–स्नायु–मेदो–मज्जास्थि–संकुलम।
पूर्ण मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः।।

सूक्ष्म शरीरः पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत, प्राण, अन्तः करण चतुष्ट्य, अविद्या, काम और कर्म, इन आठ पुरियों से बने हुए शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं (वि. चू. श्लोक –६६)। आत्मा के सारे व्याहारिक कर्म इस सूक्ष्म शरीर पर निर्भर है अतः यह निर्लिप्त आत्मा की उपाधि है। इसे लिंग शरीर भी कहते है।

वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च प्राणादि पञ्चा भ्रमुखानि पञ्च।

बुद्धयाद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः।।
मनःप्रधान लिंग शरीर ही जीव के जन्मादि का कारण है।

कारण शरीरः सत्व, रज और तम, इन तीन गुणों से जिस अव्यक्त का वर्णन किया जाता है, वो आत्मा का कारण शरीर है। (वि. चू. श्लोक –१२०)

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैनिरुक्तं तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्ति रेतस्य विभक्त्यवस्था प्रलीन सर्वेन्द्रिय बुद्धिवृत्तिः।।

स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीरों का कारण होने से अज्ञान को ही कारण शरीर कहा गया है।

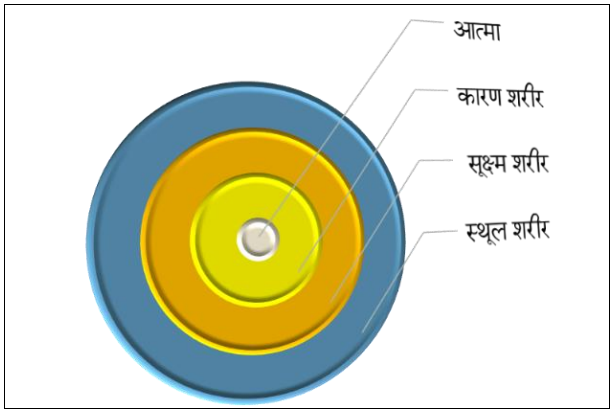

चित्र १: आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर के प्रकार

जिस तरह से शरीर के तीन भेद है उसी तरह व्यक्तित्व के चार भेद हैः स्थूल व्यक्तित्व, सूक्ष्म व्यक्तित्व, बौद्धिक व्यक्तित्व, और आध्यात्मिक व्यक्तित्व। स्थूल शरीर, लिंग शरीर के अधीन रहता है, अतः कर्मो का दायित्व उसी पर रहता है।
भारतीय दर्शन और योग में अंतःकरण को आंतरिक अंग के रूप में संदर्भित किया गया है, जो विचार और भावना का स्थान या आंतरिक उत्पत्ति है। यह शब्द अंतः और करण, दो शब्दों के संधि से बना है। अंतः का अर्थ है आतंरिक और करण का अर्थ है उपकरण अर्थात साधन जो जीवात्मा का बाह्य जगत संपर्क करने में सहायक है। साथ ही अनुभव एवं ज्ञान का संग्रह एवं उनका विश्लेषण भी करता है। इसे स्थूल शरीर और आत्मा के बीच एक सेतु के रूप में भी देखा जा सकता है। अन्तःकरण विशेषतः मन, बुद्धि, चेतना और अहंकार रूपी चार तत्वों का सम्मुचय है, इसलिए इसे चतुष्ट्य कहा जाता है।

महतत्व
श्रीमद भागवत पुराण [2] तीसरे स्कंध में महत्तत्व को परिभाषित किया गया है। ईश्वर की प्रेरणा से सत्वादि गुणों में विषमता होना

इसका स्वरुप है और यह दस प्रकार की सृष्टियों में पहली सृष्टि है। (भा. म. पु. ३–१०–१४)

कालद्रव्यगुणै रस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः।
आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः।। [2]

यह विज्ञान स्वरुप, सूक्ष्म **रू**प से स्थित प्रपंच की अभिव्यक्ति करने वाला तथा अज्ञान का नाशक है (भा. म. पु. ३–५–२७)। तम, मोह, राग, द्वेष और अभिनिवेश के समुच्चय को अज्ञान या अविद्या कहा गया है। श्री मद्भागवत के अनुसार जो सत्वगुणमय, स्वच्छ, शांत और ईश्वर के रहने का स्थान**रू**प चित्त है, वही महतत्व है (भा. म. पु. ३–२६–२१)।

यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवत पदम्।
यदाहुवासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम्।।

अब अन्तः करण के चार अववयों की विवेचना की गयी है। हालाँकि अहंकार सृष्टि की दूसरी सृष्टि है, फिर भी सबसे पहले मन, बुद्धि और चित्त की विवेचना की गयी है ताकि इनको समझने में आसानी हो।

मन (Mind)

मन वैकारिक (सात्विक) अहंकार से उत्पन्न एक जड़ एक तत्त्व है और बहुत ही सूक्ष्म है। मन में ही किसी कार्य को करने का संकल्प या विचार उत्पन्न होता है। मन के संकल्प–विकल्पों से कामनाओं की उत्पत्ति होती है (यतसंकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः)। मन की पहुँच असीमित है। मन हमेशा भौतिक अनुकूलताओं का संग्रह करना चाहता है, जैसे पदार्थ की अनुकूलता, व्यक्ति की अनुकूलता या प्रकृति की भी अनुकूलता। साथ ही साथ यह प्रतिकूलताओं का विरोध और उससे बचने के उपाय भी ढूँढता रहता है। मन की गति प्रकाश के गति से भी तेज मानी जाती है। जड़ होने के कारन मन त्रिगुणात्मक भी है। कहा गया है कि मन **रू**पी विशाल बाघ विषय **रू**पी वन में हमेशा घूमता रहता है(मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्य – भूमिषु)। मन भवबंधन का कारण श्अविद्या श है। किसी कर्म के करने के पाँच कारण होते हैं और इसे दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

१. भौतिक कारण – जिसमे चेष्टा या इच्छा, मन के द्वारा होती है, उपकरण इन्द्रियाँ हैं, कर्ता आत्मा है और अधिस्थान शरीर है।

२. पराभौतिक कारण – परमात्मा ही सभी कर्मो का परम कारण है।

बुद्धि (Intelligence)

यह समस्त लौकिक और व्याहारिक कर्मो का निर्वहन करने वाला है और अपने स्वाभाव के अनुसार पाप–पुण्य आदि कर्मो को करने की प्रेरणा देता है। पञ्च ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्तृत्व आदि वृतियों से युक्त बुद्धि को विज्ञानमय कोश भी कहा गया है। यह सदा स्थूल शरीर में श्मैं श का बोध किये रहता है। अहंकार से उत्पन्न होने के कारन ये भी त्रिगुणात्मक है। बुद्धि, राजसिक अहंकार से उत्पन्न हुई है। बुद्धि सात्विक होने पर व्यक्ति को सहज बनाती है। बुद्धि मुख्यतः अपने पुराने अनुभवों को सहेज कर रखती है और निर्णय देने में सहायक होती है। बुद्धि के भी कई प्रकार हैं जैसे व्याहारिक बुद्धि, निश्चयात्मक बुद्धि, व्यवसायिक बुद्धि इत्यादि। श्रीमद भगवद्गीता ख्३, के अठारहवें अध्याय (श्लोक ३०–३२) में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है – जो बुद्धि प्रवृति और निवृति को, कर्त्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बंधन और मोक्ष को जानती है, वह बुद्धि सात्विकी है। जिसके द्वारा धर्म और अधर्म को तथा कर्त्तव्य और अकर्तव्य को भी ठीक तरह से नहीं जाना जाता, वह राजसी बुद्धि है। जो बुद्धि अधर्म को धर्म तथा संपूर्ण चीजों को उलटा मन लेती है, वह तामसी है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ १८.३० ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ १८.३१ ॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ १८.३२ ॥

कठोपनिषद [4] में आत्मा को कर्मफल भोगने वाले रथी, शरीर को रथ, इन्द्रियों को रथ में जुटे हुए घोड़े, मन को लगाम (घोड़े लगाम से नियंत्रित होकर चलते हैं) और बुद्धि (निश्चय करना जिसका लक्षण है) को सारथी बताया गया है।

आत्मन रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तू।
बुद्धिं तू सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।

इसी की व्याख्या श्री मद भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कंध में विस्तृत**रू**प से की गयी है (पुरंजनोपाख्यान का तात्पर्य, श्लोक १८–२०), जिसमे पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को शरीर**रू**पी रथ के पांच घोड़े, पुण्य और पाप **रू**पी कर्म को उसके पहिये, सत्वादि गुणों को रथ के ध्वज, पांच प्राण (प्राण वायु,अपान वायु, समान वायु,उदान वायु और व्यान वायु) डोरियाँ है, मन बागडोर है, बुद्धि सारथी है, ह्रदय सारथी के बैठने का स्थान है, सुख और दुःख आदि द्वन्द रथ के जुएं हैं, पञ्च कर्मेंद्रियाँ उसकी गति है और इन्द्रियों के विषय ही मार्ग है।

चित्त (Consciousness)

चित्त सत्व, राजस और तमस नमक जड़ पदार्थों से बना हुआ एक तत्त्व है। यह जीव का एक ऐसा ही आंतरिक साधन है जैसे कि हस्तपादादि बाह्य साधन है। जिस प्रकार बाह्य साधन जीव के आधीन है उसी तरह चित्त भी जीव के आधीन है। चित्त का स्वाभाव तीन प्रकार का है यथा प्रकाशशील, गतिशील और स्थितिशील, अतः यह त्रिगुणात्मक है। चित्त की पांच अवस्थाएं होती है यथा क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ख्,। मनुष्य अभ्यास के द्वारा चित्त की इन पांच अवस्थाओं में से किसी अन्य को दूरकर दूसरे अवस्था को प्राप्त कर सकता है। साथ ही प्रमाद आदि कारणों से उच्च अवस्था से नीची अवस्था को प्राप्त हो सकता है। चित्त में होने वाले वास्तविक और अवास्तविक ज्ञान को वृति या व्यापार कहा जाता है। चित्त के निर्माण में सत्वगुण की प्रधानता है लेकिन उसमे रजोगुण और तमोगुण भी मिश्रित रहते हैं। साधारण शब्दों में स्वाभाव, आदतों और संस्कारो के समुच्चय को चित्त कहते हैं ख्, और यह मन का भीतरी आयाम है जो चेतना प्रदान करती है। चित्त की अवस्थाएँ ख्,,जिसे चित्र २ में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र २: चित्त की अवस्थाएँ

१. क्षिप्तावस्था – जिस समय चित्त में रजोगुण और तमोगुण का उदय होता है, उस समय मनुष्य विविध ऐश्वर्यों को प्राप्त करना चाहता है और इन्द्रियादिक विषयों में उसकी **रू**चि होती है। ऐसी अवस्था को क्षिप्तावस्था कहा जाता है।

२. मूढ़ावस्था – जब मनुष्य में तमोगुण का प्रभाव बहुत अधिक होता है तो उसे अधर्म, अज्ञान ज्यादा प्रिय लगते हैं। ऐसी अवस्था को मूढ़ावस्था कहा जाता है।

३. विक्षिप्तावस्था – जब रजोगुण ज्यादा होता है और तमोगुण थोड़ा कम हो जाता है, तब मनुष्य को धर्म, ज्ञान और वैराग्य में अधिक **रू**चि होती है। ऐसी अवस्था को विक्षिप्तावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में मनुष्य अपने चित्त को किसी एक विषय पर एकाग्र करने की कोशिश करता है, कुछ हद तो वो कामयाब भी होता है लेकिन किसी बाधक कारण से उसकी वो स्थिति स्थिर नहीं रह पाती है। इस स्थिति में वह कोई भी निर्णय लेने में सक्षम नहीं होता है।

४. एकाग्रावस्था – जब सतोगुण बहुत अधिक बढ जाता है, रजोगुण और तमोगुण क्रमशः कम हो जाते हैं। इस अवस्था में मनुष्य विवेक, वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने चित्त को एक विषय में चिरकाल तक स्थिर कर लेता है, ऐसी अवस्था को एकाग्रावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में किसी निर्णय को लेने में निश्चयात्मक बुद्धि का उपयोग किया जाता है।

५. निरुद्धावस्था – जिस अवस्था में चित्त की समस्त व्यापारों का निरोध हो जाता है, उसे निरुद्धावस्था कहा जाता है। यह स्थिति समाधि की उच्चतम और परवैराग्य की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद ही ईश्वर साक्षात्कार होती है।
ये विविध परिवर्तन चित्त में होते हैं, जीवात्मा में नहीं क्योंकि चित्त परिवर्तनशील है, वह उतपन्न होता है और नष्ट भी होता है। जीवात्मा अपरिवर्तनशील है, न तो उत्पन्न होता है न ही नष्ट होता है ।

अहंकार (Ego)

श्रीमद भागवत पुराण के अनुसार, यह दूसरी सृष्टि है। इससे पञ्चभूत, ज्ञाननेंद्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है (भा. म. पु. ३–१०–१५)।

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः।

तमोगुण अर्थात अज्ञान के द्वारा भ्रम में पड़ने से देहादि में आत्मबुद्धि होती है, उसे ही अहंकार कहा जाता है। ९ मैं ९ सभी भले बुरे कार्यो को करने वाला हूँ तथा सुख–दुःख का भोक्ता हूँ, यही अहंकार है। यह क्रिया –शक्ति प्रधान है।
अहंकार के कारण ही विषयों की अनुकूलता और प्रतिकूलता से क्रमशः सुख और दुःख का अनुभव होता है। अहंकार की भी तीन अवस्थायें बताई गयी है – जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, जो प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा है। जिस अवस्था में इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान तथा बुद्धि की सारी वृतियां समाप्त हो जाती है, उसे ही सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है।

विवेचना और निष्कर्ष

मन और चित्त में बहुत ही सूक्ष्म अंतर है। मन कर्ता है, वह जब किसी कार्य को करने की इक्छा करता है तो चित्त उसको पूरा करने के लिए चिंतन करता करता है। चित्त विकल्पों का भंडार है। मन, बुद्धि, चित और अहंकार के कार्यो को इस तरह समझा जा सकता है – मान लो, आप मधुमेह से पीड़ित है, आपको आम खाने की इक्छा होती है, बुद्धि आपको प्रेरित करेगी कि आपको आम खाना चाहिए या नहीं। पहले कभी अपने आम खाया था और आपके मधु का स्तर बढ़ गया था और आपको अस्पताल में भर्ती होना पड़ा था। यह सूचना चित्त में अंकित है। बुद्धि, चित्त में अंकित सूचनाओं के आधार पर आम न खाने का निर्णय लेगी। लेकिन आपके स्वाभाव के अनुसार आपका अहंकार आपको आम खाने पर विवश करता है और आप आम खाते हैं। परिणाम स्वरुप इससे होने वाले कष्ट के आप ही उत्तरदायी होंगे।
शरीर में अन्तः करण आत्मा के चौतन्य आभास तथा तेज से युक्त होकर इन्द्रियों में श्मैं श वृति के साथ रहता है, यह सत्वगुणों से आच्छदित और ज्ञानोत्पत्ति का का हेतु है। यह पंचभूतों के समस्त सात्विक और पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के अपने अपने विषय को ग्रहण करने में सहायक होता है.

अन्तःकरण में चार वृत्तियाँ होती है [7]।

१. बुद्धि – यह अन्तःकरण की निश्चयात्मिका वृति है, जो पदार्थ के स्वरुप का निश्चय करने में सहायक होती है। बुद्धि को ज्ञानी और विवेचक दृष्टिकोण के **रू**प में देखा जा सकता है। यह हमें सही और गलत, सत्य और असत्य के बीच भेद करने में मदद करता है। यह उस अवस्था को प्राप्त करने में मदद करता है जहां हम अधिक सूक्ष्म ज्ञान और आध्यात्मिक शिक्षा को समझ सकते हैं।

२. मन – यह अन्तःकरण की संकल्पात्मिका वृति है, जिससे कामनाएं उत्पन्न होती है। मन को अक्सर उन विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और आसक्तियों में सक्रिय देखा जाता है जो हमारे चेतना का अंश होता है।

३. चित्त – यह अन्तःकरण की चिंतनात्मिका वृति है, जो किसी विषय में चिंतन करने में सहायक होती है। जो सभी अनुभवों, विचारों, भावनाओं और ज्ञान का स्रोत होता है। चित्त की अनेक प्रकार के वृतियों से पूर्वजन्म के भी कर्मो का अनुमान होता है तथा इन्द्रियों की चेष्टाओं से उनके प्रेरक चित्त का अनुमान होता है।

४. अहंकार – यह अन्तःकरण की अभिमानात्मिका वृति है, जो ९ मैं९ का अभिमान कराती है। अहंकार को ९अस्तित्व का भ्रम९ या ९विचारी अहंकार९ के **रू**प में समझा जाता है। यह आत्मा की भ्रांति है जिसके कारण हम अपने को अलग और संकीर्ण व्यक्तित्व के **रू**प में मानते हैं। अहंकार हमें अपनी स्वतंत्रता, अहंकृति और अपने इच्छाओं और भावनाओं के प्रति आसक्ति की भ्रांति देता है। अन्तःकरण भी नित्य नहीं है (अन्तःकरणं नित्यो नास्ति)।
मन और बुद्धि दोनों अहंकार से उत्पन्न हुएँ हैं, जिसमे मन वैकारिक (सात्विक) अहंकार से और बुद्धि तैजस (राजसिक) अहंकार से, दोनों ही सूक्ष्म तत्त्व हैं। अहंकार की उत्पत्ति महत्तत्व से हुई है। कारण**रू**प होने के कारन अहंकार मन और बुद्धि से सूक्ष्म है और महत्तत्व अहंकार से भी सूक्ष्म है।
संदर्भित सभी ग्रंथो का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि अंतःकरण ही महत्तत्व है।

संक्षिप्त शब्द

वि. चू. – विवेक चूड़ामणि
भा. म. पु. – श्रीमद भागवत–महापुराण

सन्दर्भ सूची

1. श्री मत शंकराचार्य (अनुवादक – स्वामी विदेहानन्द), विवेक चूड़ामणि, प्रथम संस्. रामकृष्ण मठ नागपुर.
2. वेदव्यासमहर्षि, श्रीमद भागवत–महापुराण (प्रथम खण्ड), द्वितीय सं. गीता प्रेस, गोरखपुर.
3. वेदव्यासमहर्षि, श्रीमद भगवत–गीता. गीता प्रेस, गोरखपुर.
4. कठोपनिषद, प्रथम अध्याय, द्वितीय वल्ली, श्लोक ३ ईशादि नौ उपनिषद (शंकरभाष्यार्थ). गीता प्रेस,गोरखपुर.

5. परिवाज्रकव्याख्याकार – स्वामी सत्यपति, योग –दर्शनम, द्वितीय सं. दर्शन योग महाविद्यालय, सांबरकांठा, गुजरात.
6. हरिकृष्ण दासगोयनका, महर्षि पतंजलि कृत योग –दर्शन, छब्बीसवाँ. गीता प्रेस, गोरखपुर.
7. सरस्वतीस्वामी अनन्तानन्द, वेदांत–तत्त्व–विचार, प्रथम संस्. संसार प्रेस, संसार लिमिटेड, काशीपुरा, वाराणसी.